

स्वगत

प्रकाशक

रामदत्त टाटिया स्मृति प्रकाश
४ शरत चटर्जी एवेन्यू
कलकत्ता २६

लेखक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं।

मूल्य—चालीस रुपये

मुद्रक

दि टैनिन्गल एण्ड जनरल प्रेस
१७ ब्रुक्लेड लेन कलकत्ता ७०० ०६६

वन्दनवार

पृष्ठ संख्या

आत्म बोध

१	स्वगत	१
२	व्यक्त अव्यक्त	२
३	महागीत	३
४	गत-आगत	४
५	गीतो के दूधिया फेन	५
६	दुन्दु हृषे बासी	६
७	तन्म्य-तत्त्व	७
८	निकष	८
९	सात-ना त	९
१०	सम्यग बोध	१०
११	भेद मुक्त	११
१२	सापेक्ष	१२
१३	कथ अकथ	१३
१४	भाषातीत	१४
१५	पूण पूण को भरता	१५
१६	विप्रलम्भा	१६
१७	मन्दिर का दीप	१७
१८	अतरयामी	१८
१९	प्रायना	१९
२०	सुख दुख	२०
२१	सोने की लका	२१
२२	मभधार	२२
२३	बीज	२३
२४	अतर मयन	२४
२५	कमल वन	२५
२६	ऐसी भूल हुई	२६
२७	दीट	२७

२८	दानी	
२९	कृपण दपण	२८
३०	कौंधा अकूल	२९
३१	अपने से जुडो	३०
३२	उत्स	३१
३३	सपना	३२
३४	दुविधा	३३
३५	महापात्रा	३४
३६	मदिर का घटा	३५
३७	सत चित आनन्द	३६
३८	आनन्दमयी वेदना	३७
३९	कसक	३८
४०	मृग-मन	३९
४१	लक्ष्य	४०
४२	सशय विस्मय	४१
४३	सत्य	४२
४४	प्रतिबद्ध दष्टि	४३
४५	क्षति	४४
४६	आहत अमिमयु	४५
४७	अथ की बेडिया	४६
४८	उदार शून्य	४७
४९	मृगमय-चिन्मय	४८
५०	शेष अशेष	४९
		५०

जीवन बोध

५१	क्षण	
५२	काल गदड	५३
५३	विडम्बना	५४
५४	शिलाए और तृण	५५
५५	गीतो की वापसी	५६
५६	प्रश्न	५७
५७	कटा हुआ पतंग	५८
		५९

ख

५८	नदी	६०
५९	दिन	६१
६०	धूप मे गमले	६२
६१	खेला	६४
६२	शब्दों के नचवारे	६५
६३	आख का भरम	६७
६४	निर्दोष	६८
६५	पूत-कपूत	६९
६६	आख मे जवान	७०
६७	गीत का गांव	७१
६८	अनुभव	७२
६९	सुधियों के अक्षर	७३
७०	धरती माता	७४
७१	प्रकृति बहुरिया	७५
७२	काल वशाख	७६
७३	वसंत गीत	७८
७४	गीत	७९
७५	साध्य बेला मे भील	८०
७६	गोधूली	८१
७७	राका	८२
७८	वास ती	८३
७९	उषा	८४
८०	संघ्या भीलनी	८५
८१	धूप	८६
८२	जेठ की दुपहरिया मे पीपल	८७
८३	पावस	८८
८४	शिशिरात्त	८९
८५	सृजन सगीत	९०
८६	बेला फूला रात मे	९१
८७	उत्खनन	९२
८८	सखि, कितने दिन और	९३
८९	सूरज	९४

९०	सोचो क्षण भर	९५
९१	प्रयास	९६
९२	सजीवन	९७
९३	चेतना का हाथ	९८
९४	रोबोट	९९
९५	लोग	१००
९६	तूणीर	१०१
९७	सत्य	१०२
९८	पूत का दिन	१०३
९९	मागशीय	१०४
१००	आश्विन	१०५
१०१	कार्तिक	१०६
१०२	दिग्भ्रम	१०७
१०३	एक और शर	१०८
१०४	स्वभाव और अनुभूति	१०९



ଅନୁମୋଦିତ

मर्म

बहा, सब
अनबहा,
शेष अब
स्वगत रहा !

१ मई १९८६

विरजीव

जयचंद माल जी दूगढ
यो

अत्म बोध

स्वगत ।

मुना नहीं
पर मुन अपने से
तू अपने ही बोल !

त्याग बधिरता का यह अभिनय
कर अनुभव से बोध,
मुत्पर नहीं पर तप को पहली
लसिध मौन प्रबोध,

पर को नहीं
तुला पर साधक
अपना आपा तोल !

दृष्टि सधे तो हो जायेंगे
निरे निरधक बाट,
राड तुला से तुल सशता पर
मुत्तता नहीं निराट,

जोयन होरा
इसे गवा मत
तू कीडी व मोस !

हटा अहम की धूलि करेगा
प्रम मडल विस्तार,
हरत कमनवत होगा क्षण मे
सब अदीठ क्यापार

निज से यदि
साभान,घाहता
अतरें के पट एतेम ॥

अव्यक्त अव्यक्त !

नहीं असगत, सगत, गारवत
स्थिति का गति का द्वन्द्व !

सप्य सप्य है किन्तु मूल्य का
सवेदन आधार,
व्यक्त दृष्टिगत पर अव्यक्त से
जुड़े बिना निस्सार,

सुमन विटप से बद्ध, मुक्त है
किन्तु हृदय की गंध !

'जो है' उसकी सार्थकता है
'मैं हूँ' का चिर बोध,
यही अस्मिता परम सत्य की
ऋषि अवेपित शोध

नाद निनावित होता हो कर
महा छन्द से बन्द !

'स्व' जिस का सन्दर्भ वही है
सहज व्यवस्था धम,
रहे सृजन सापेक्ष कम का
मात्र यही है मम

तभी देह का स्वेद बनेगा
मन का मधु मकरन्द !

महागीत !

सग्य है दूग का
क्षितिजों के छोर,
लौटो हे घघु
अपनी ही ओर,

धामे हैं यत्गा
सूरज की काल,
अपना ही बीपक
रख तू सनाल,

जतर मे अनहद
बाहर रख घोर,
मिलना जो 'स्व' से
आओ निज ठौर,

सौटो हे घघु
अपनी ही ओर !

गत आगत !

कल सद्यः फिर
समय वितप से
भर जो वत्सर सुमन गया
स्वयं उसी ने
नई कली बन
आज प्रात मे जन्म लिया,

सृजन विसजन
गति का क्रम है
नहीं यहा कुछ जीण नया
भेद मुक्त जो
नहीं विमूर्छित
दष्टि वही है काल जया !

गीता के दृधिया फेन !

उमडता है
घटयत देह मे
चेतना का विराट सिन्धु,
टकरा टकरा कर
लौट आती है
मन के विस्तृत तट से
विचारों की उत्तुंग उन्मिया,
समेट लेता है
फिर जिन्हें
अपनी अकथ अतलता मे
हृदय का गभीर मनघार
पडा है जिस के
एकांत निविष्ट मे
साधेवना की सीप मे बन्द
पौर का वह अनमोल मोती
अनुभूत कर
जिस की अलीकित आभा
आत है तर कर
तुम तब
मेरे गीतों के दृधिया फेन !

छन्द्र हुये वासी ।

चिर परिचित मेरे
द्व द्व हुये वासी,
जमिलापी मन अब
गृह वासी स-वासी,

सागर का गजन
तट को क्या बाधा !
अच्युत वह, लहरों
पगलाई राधा,

बुदबुद से सुख दुख
पतभर मधुमासी,
आनंदित मुझ में
मेरा अविनाशी !

तथ्य तत्त्व !

जिजीविषा से भिन्न चेतन
स्वयं का अभिबोध !

मनुज को ही है मिला
अनुभूति का वरदान,
योनि भर बस भोगते हैं
इतर सारे प्राण,
अनभिज्ञ निज अस्तित्व से
उन में नहीं सम्बोध !

मैं स्वयं ही तू इसी को
व्यक्ति कर सवेद,
मूल्य रचता वेद से
अनुभूत कर निवेद,
तथ्य को कुछ अथ देती
तत्त्व की यह शोध !

कृति बनी कर्ता, हुआ
निरपेक्ष जब सापेक्ष,
दृष्टि की इस लब्धि से ही
सृष्टि है सविशेष,
जो सचेतन सृजन उसका
मूल है प्रतिबोध !

निकष ।

परल स्वय को अभय निकष पर
तू कितना गत राग !

नहीं त्रास से मुक्त हृदय, मन
जब तक शेष कथाय,
इ त नहीं अइ त बनेगा
निष्फल अध्यवसाय,
आत्म रसायन अनुकम्पा से
होगा राग अराग ।

गज कितना बल युक्त किन्तु है
लघु चोटी से भीत,
क्रिया वही जो प्रतिक्रिया से
होती स्वय घ्यतीत
नही देह से किन्तु वृत्ति से
होता फलित विराग ।

बिना हृये भय मुक्त न होगा
विकच मत्री का फूल
कर करणा के जल से सिंचित
माली अपना मूल
स्वय बनेगा विश्व जायगा
जब सवेदन जाग ।

सान्ति, नान्त ।

व्यक्त अक्षर भर पर अव्यक्त है
अक्षर अनन्त अपार ।

अनगिन को गिनने में अक्षर
गणित सिद्ध विज्ञान
इस विराट का अनेकान्त ही
कर सकता स धान
घटाकाश से स्वतः प्रमाणित
निराधार आधार ।

प्रकृति पुष्प की अविधि भर है
यह शाश्वत व्यापार
यही योग है सृजन भग हो
बन जाता सहार
श्रेयस्कर है सविधान वह
जो इस के अनुसार ।

जो पदार्थगत चिन्तन उसका
भगुर से सम्बन्ध
स्थितियों से ही होता केवल
बस उसका अनुबन्ध
साध्य मानना मात्र देह को
कुण्ठा जनित विचार ।

सम्यग् बोध ।

इस घ-दन के वन मे कितने
महा विपले नाग ।

नहीं प्रभावित विष से लेकिन
इस की मादक गंध,
इस बाटता पवन किन्तु है
गरल स्वय मे ब-द,
अपन अपन धम जलद के
उर मे दाहक आग ।

नहीं बरसती बूदो मे पर
उसका किंचित ताप,
शीतलता है उन मे, अपना
चपला या उत्ताप,
निज स्वभाव मे बद्ध वस्तु का
भाव नहीं है राग ।

हिंसा तो है विकृत मन का
सकल्पित विक्रोम,
सपोषण निर्दोष किन्तु है
शोषण की जड लोम,
जागत है जो स्व मे उसका
सम्यग बोध विराग ।

भेद मुक्त !

विदा हो रहा दिवस, दीप की
लौ का तिलक लगाओ !

दिशा दे रही ध्योम थाल मे
धर कर अक्षत तारे,
कुशल क्षेम से घर को लौटें
फिर सूरज भिनसारे,
चला आ रहा तिमिर, ज्योति से
उस को पथ बिसाओ !

अतिथि मान कर इस को भी प्रिय
दो कुटिया मे आने,
यह करुणामय लाया प्रिय के
सपने साथ सुहाने,
नींद लगी विरहिन को, तम के
प्रति आभार जताओ !

विदा करेगी प्रकृति इसे भी
लगा उषा का टीका,
भेद मुक्त जो दष्टि अमगल
करती नहीं किसी का,
मम त्वम का यह द्वन्द्व मिटे यदि
अपने मे जग जाओ !

सापेक्ष ।

सूरज के ढलने की बेला
धूप चढी शिलरो पर ।

नहीं पतन उरयान स्वय कुछ
यह सापेक्षित बशान,
कथ कर भी जो रहे अकथ वह
शब्दातीत चिरतन,
गूज गगन मे गई हुई जब
मुरली मोन अघर पर ।

जो समाप्ति है वहीं व्याप्ति है
परम गूढ यह चि तन,
कर सकता अनुभूत द्रव्य से
जो तटस्थ वह चेतन,
मेघ बरस कर बिखरा, बूदें
नाच रही लहरो पर ।

गति की ही है परिणितिया ये
भिन्न अभिन्न परस्पर,
द्वन्द्व मुक्त हो जीव स्वत ही
बन जाता है ईश्वर,
क्षण जो जाते बीत वही फिर
बन जाते म'व तर ।

२७२ ८६

कथ अकथ ।

कहे अनकहे
कितने ही सुख दुख
ऐसे ही रहे,
छूटे सब साथ हाथ
अपनों के गहे
रेती के सपने
लहरो मे बहे
सहे अनसहे
गीत बने आसू
मेने जो कहे !

भाषातीत !

भाषातीत समग्र इसे बस
कर सफते अनुभूत !

गद्य टोह भर देते उस की
जो है स्वय अगद्य,
बाहर उसकी प्रतिध्याया भर
वह भीतर उपलब्ध,
विगत, अनागत, आगत इस से
सापेक्षित है भूत !

यदि ह्यासमय पुदगल लेनि
यह अपने मे ध्रौव्य,
अतिशय ही सम्बोधन उसका
न वह भव्य अभव्य,
मौन मात्र ही सक्षण उस का
जो उस से अभिभूत !

नही विशेषण उसका कोई
वह तो स्वय विशेष,
शेष खोजते अज्ञ ध्यय ही
उस का जो नि शेष,
यह विभूति है इगित करते
लेपित कर अवधूत !

२१२८६

पूर्ण पूर्ण को भरता ।

जब जीवन श्रम से थकता,
अघरों पर बशी धरता
में कृष्ण क-हैया बनता

बहती गीतो की धारा,
फिर पुलकाता मन हारा,
छुट जाता कहीं किनारा,

अतर मे अनहव बजता,
केवल आन-व लहरता,
यह सृष्टि छ-वमय तय है,
सप्तम स्वर स्वय प्रलय है,
हर अय इति बस अभिनय है,

कृष्ण का निर्भर भरता,
सिंचित हो मूल उमगता,
एग पुन नीड को रचता,
कर रन बसेरा उडता
धरती से अम्बर जुडता,

फिर पूण पूण को भरता,
ऐसे ही सृजन सवरता,
अघरा पर बशी धरता
में कृष्ण क-हैया बनता ।

विप्रलम्भा ।

स्वप्न में तू देखती वह
द्वार पर तेरे सडा है ।

आज तक अपलक रही यी
जागती तू आत विरहिन,
पर नयन मे इस घडी कर
छल गई बस नौद बरिन,
कौन जो तुम को जगाये
तिमिर का पहरा कडा है ।

निपट गूगी दीप की ली
हाय, यदि वह बोल पाता
जाग बेसुध पिय गये आ
स्नेह से तुम को जगाती,
है धरी कुजी निकट पर
दञ्ज सा ताला जडा है ।

जा रहा है चिर प्रतीक्षित
यह विरल सयोग का क्षण,
देख कर पद चिंह कुररी
सा करोगी करुण ऋदन,
विप्रलम्भा तुम रहो कुछ
योग ही ऐसा पडा है !

मन्दिर का दीप ।

चिमय के मन्दिर मे मेरा
मृण्मय दीप जले है ।

मे उस से आलोकित हू या
वह मुझ से आलोकित ?
किया किसी ने अपित मुझको
या मे स्वयं समर्पित ?

कहो स्नेह थढ़ा से पोछे
या उस से पहले है ?

प्रश्न यही उत्तर दो प्रतिमे
या दे मुझे पुजारी,
समाधान जो देगा उस को
मानूंगा उपकारी,

विभा नमन मे किंतु अधेरा
फिर क्यों हृदय तले हू ?

तम करता हू ज्योतिष, निष्प्रम
करता मुझे सबेरा,
पवन प्राण यह सत्त्व, पवन ही
किंतु मरण है मेरा,

चुप भी रहो सीख यह मेरे
उतरे नहीं गले हू ।

अतरयामी !

तुम्हें चढ़ाऊंगा मैं प्रतिमे
कुछ पाटे कुछ फूल !

फरते रहे पुजारी अब तक
चन्दन में हाँ सेप,
किंतु कभी गाँ में माटी से
प्रियतम आज प्रसेप,

बियाँ चाहता सगोधित मैं
श्रद्धा की जो भूल !

जो समग्र है, वर समग्र से
तू उस का जमिपक
स्वयं रचित मूल्यों का आग्रह
कवच है अविदक,

वह अनुवादक कसा है जो
नहीं जानता मूल ?

जो विभक्त है भक्त नहीं वह
उस का पूजा जाय
इसी लिये कि ले लें उसका
प्रभु अपने सिर पाय,

छल से होगा अतर यामी
कभी नहीं अनुकूल !

प्रार्थना ।

हे नहीं शब्द से
यदि जुड़ी साधना !
मात्र है आत्म छल
वचना प्राथना,

मर्म मे पठ तू
कर परम चिंतना,
जायगी सहज बन
चेतना बदना ।

सुख दुःख !

जसे सुख को सहज मानता
यसे दुख को मान !

अगर चाहता मुक्ति द्वंद से
मन को कर निद्वंद,
दिवस निगा से महाकाल का
यद्यपि है अनुबन्ध,

परमहंस यह दोनों के प्रति
उसका भाव समान !

पूरव पश्चिम मात्र कल्पना
भ्रम है विषयता व्योम,
जो होता प्रतिबिम्बित दग की
अक्षमता तम तोम,

तू अपना ही लक्ष्य और है
तू अपना स ध्यान !

दष्टि सत्तुलित जिस की होगा
उसे सत्य का बोध,
जब तक है भासक्ति बनेगा
दशन ही अवरोध

विधान नहीं स्वयं ही रचता
अपना मनुज विधान !

सोने की लका !

क्षण से मन भर गया प्राणधन
फिर क्या करूँ कनक का ?

मुझे ज्ञात है तरे उर मे
सहज स्नेह की धारा
उस की ही अभिव्यक्ति मात्र है
यह उपहार तुम्हारा,

लेने दो प्रिय उदक मुझे तो
अपने चरण कमल का !

बिम्ब स्वयं तुम, मैं तो केवल
साथ चल रही छाया,
किया कभी क्रय तो विक्रेता
कह देता भर पाया,

मैं नर, तुम नारायण रखत
तलपट सब क्षण क्षण का !

नहीं गाठ मे बाधा कुछ भी
रखी न कल की चिंता,
मुझे सतत विश्वास मुझी मे
बठा स्वयं नियन्ता,

लुभा न भ, थी चार कदम पर
ही सोने की लका !

मभधार !

लिपट गया चंचल सहरो से
भायाकुल मभधार !

मुझ घेरते सतत घूट रच
मेरे ही आघत,
एक गत से निकला, आगे
और दूसरा गत,

साथ ले चलो मुझे देख लू
अपने कूल कगार !

कर देते हैं मुझ तक आकर
माझी धीमी नाव,
सुनकर उनकी बात और भी
गहरा होता घाव,

नहीं डुबा दे, समल समल कर
खेना सब पतवार !

शरण भागता प्रतिपल मुझ मे
भटका नीर अधीर,
बू दो को विश्वास, प्रीप्प मे
रहता यह गभीर,

पर कितना असहाय, दीखता
मेरा मुझे न पार !

२७ २ ८६

बीज ।

बीज जगेगा इसे चाहिये
प्रिय की करुणा धार ।

नही सकेगा सजीवित कर
इसे धूप का रूप,
चारु चादनी, सागर, मरिता
मानसरोवर कूप,

आ सहलाये कपिलवस्तु का
फिर करुणाद्र कुमार ।

अभी अभी छू इसे गया है
मादक मलय समीर,
खुल न इस के नयन, विमूर्च्छा
है इतनी गभीर ।

मेघ अधु से होगा स्पन्दित
पुन हृदय सुकुमार ।

दृष्टि नहीं यह, इसी बीज में
कितने बीज अनन्त,
गये और आयेंगे लेन
इस से भीख बसन्त,

सिचन मिले अकिचन ही यह
वामन का अवतार ।

अतर मथन !

क्षमा कर गा स्वयम स्वयम को
पहले मैं पछता लू !

क्षमा किया तुमन तो मुझ को
पर यह क्षमा अधूरी,
किया न दबित मुझे
हो गई मेरी पीडा गहरी,

समझ लिया तूने अपने को
मैं निज को समझा लू !

करणा कितनी अकरण होती
इसे आज ही जाना,
बाध्य किया अतर मथन को
मैंने स्व पहचाना,

तुम अपने को प्राप्त हो गये
मैं अपने को पा लू !

तुम ने दिया अमूल्य, लगा तब
मैं निमूल्य निरथक,
मूल्यो को ही समझ रहा था
मैं जउ सब कुछ अब तक,

दष्टि मुझे बी डस से अपनी
अध दष्टि उजला लू !

२८ २ ८६

कमल घन !

अनदेखा ही रहा कमल घन
अगम गहन कातार !

साता उसकी सुरभि समीरण
पुलकाता मन प्राण,
होता यदि मैं विहग पहुँचता
पल में मार उडान,

भरी हिल पशुओं से अटथी
रुकते पग हर बार !

सपन तरते उस सुषमा के
लोचन में दिन रात,
बसे हृदय में नील कमल से
कब होगा साक्षात् ?

नहीं देखती पगडडी भी
जो जाती हो पार !

हुआ शब्द अंतर में भय है
तेरी गति का बंध,
दुग का तम कातार
कमल घन, पहुँचेगा निबन्ध,

दृष्टि स्वयं ही पथ बनेगी
होगी जब अदिकार !

ऐसी भूल हुई !

पहुँचा मैं पीछे
पहले गीत गया,
भँटूँगा क्या मैं
मधु घट रीत गया ?

दुविधा थी मन में
सहसा ध्यान हुआ,
भर लूँगा तुमको
पुलकित प्राण हुआ,

हारा भी जीता
ऐसी भूल हुई,
काटे सी पीडा
खिल कर फूल हुई !

१३८६

ढीट !

ढीठ मली पर जान बूझ कर
बन कर रहा अढीठ,
आये कितनी बार न देखा
मे हूँ कितना ढीट ?

सुनता रहा तुम्हारी पग ध्वनि
लौट गये प्रभु आप,
इच्छा हुई पुकारूँ, बोला
अहम, रहो चुपचाप,

पर अब जब दग ज्योति गई बुझ
तुम को रहा टटोल,
मेरी करुण गुहार द्वार दें
निज मंदिर का खोल ।

दानी !

दिया बहुत लुम ने
छिद्रित थी भोली,
कह न सकी मत दे
इच्छाए भोली,

गये बिलर दाने
घरती के ऊपर,
चुगने में बठा
घिरी घटा अम्बर,

फुटिया मे आया
कर, आने की कल,
लोटा में दाने
उग कर हुये फसल !

१ ३ ८६

रूपण दर्पण !

रूपण यह
दर्पण !
क्यों खड़े
द्वार पर इस के !
देगा नहीं
कुछ भी अपना
देख भले
निज को तकना !
सठियाये
नहीं गया बचपना ?
आये तुम
बदल बदल
कितने ही मुखौटे
घोषन के, जरा के
दुबलाये, मोटे
पर खायेगी नहीं धोखा
इस की दीठ
भले ही तुम
अपने को ठगना,
करते हैं कुछ तो
याचक भी शरम !
पर तुम बेशरम
ध्वष है
तुम को
देना भी उलहना ?

कौधा अकूल ।

धय भाग आय
मेरे तुम द्वार,
व्यक्त कर कैसे
मेरा आभार ?

मुलभ हुई दुलभ
प्रिय पद की धूल,
बन गये चन्दन
बोये बबूल,

बिछुडा कब नद से
भूले या कूल,
गहते ही बहिया
कौधा अकूल ।

२५२ = ६

अपने से जुड़ो !

तुम अपने से जुड़ो, चाहते
बनना अगर धिराट !

अगर भीड़ से जुड़, खण्ड भर
रह जाओगे ब धु,
नहीं कभी व्यक्तित्व बनेगा
बूद न होगी सि धु,
रहना बने नगण्य न होगा
तिलकित कभी ललाट !

दृष्टि नहीं तो सृष्टि रहगी
केवल दहिव बोध,
अधी होती भीड़ साथ तू
उस के हुआ अबोध,
तुम्हे मिलेगी पगल कसे
अपन घर की बाट ?

चौराहे पर दिशा भ्रा त से
भले भीड़ के साथ
करते रहना नारेबाजी
हिला हिला कर हाथ,
पिस जाओगे भीड़ स्वय है
चक्की के दो पाट !

उत्स !

नहीं है
दीपक का
उजियारा
उस का निज का !

नहीं है
फूल की सुगन्ध
उस की स्वयं की !

नहीं है
निभर का सगीत
उस का अपना !

कहा है
इन का उत्स ?
पूछा मैंने
सूर्य से
ऋतुओ से
नगपति से
रहे सब
निरुत्तर
बन गया
प्रश्न ही
उत्तर
में ही है
वह उत्स
जो करता है
इन सब को
अनुभूत !

सपना ।

जिजा है मीने
अपने मे
एक सपना
भरे हैं जिस मे
जीवन की तूलिका से
इन्द्रधनुषी रग,
अब प्रतीक्षा है
उस प्रभात की
जब इसे
प्रतिबिम्बित करेगी
कु आरे सत्य की
अपलक आल ।

दुविधा !

मुन पडती है
समीप से
समीपतर आती
तुम्हारी पगध्वनि,
मिलना है मुझे
तुम से
जिस कक्ष मे
लटक रहे हैं
उस की दीवाली पर
मकड़ियों के जाले,
भरी है चमगादरो की
बीटो की बदबू,
रंगती हैं
घिनौनी विस्तुइया
शतपद कनखजूरे,
सोचता हू रोज
भाडने बुहारने की बात
पर जब भी
उठाता हू भाडू
उठ खडी होती है
एक दुविधा
कहा से कहा
पहले शुरुआत ?

१३३८६

महायात्रा !

ब धु !

खोजना पडता है
छोटी छोटी यात्राओ मे
कोई न कोई साथ,
लेना होता है
आवश्यक माग व्यय,
बाधना पडता है
ओढ़ना, बिछौना,
इस के विपरीत
कितनी
निश्चित होगी
यह महा यात्रा
जब नहीं लेना होगा
कुछ भी साथ
नहीं देना होगा
किसी को भी
पट्ट च का समाचार !

मन्दिर का घण्टा !

आते, जाते
बजाते
भक्त
मन्दिर का घण्टा,
हो जाता भग
नीरवता का शील,
धरधरा उठती
पापाणी प्रतिमाए,
कर लेती
आत्महत्या
टकरा कर
प्राचीरो से
प्रतिध्वनिया,
साक्ष्य इस
उत्पीडन का
कवल
बधिर पुजारी !

सत् चित् आनन्द ।

भर जाते है
फूल
रह जाते हैं
स्मृति मे
रूप, रग, रस, गंध
यही है
सम्बन्ध
जो नहीं होने देता
मन को निबन्ध
चलता है
अहर्निश
मुक्ति के लिये द्वन्द्व
जो पहुँच कर
अपनी चरम परिणति पर
बन जाता है छन्द
जिसका है
उस विराट से अनुबन्ध
जो है केवल
अरूप अलक्ष
सत् चित् आनन्द ।

आनन्दमयी वेदना !

आवृद्ध है
जो
शब्द व घट में
अर्थ का
निबध आकाश
वही है
कृतिकार को
अपूर्ण कृति की
पूर्णता !
बिम्बित है
जो
रेखाओं का
सलवट में
अनुभूति का
विदेह आभास
वही है
चित्रकार के
जबचेतन की
चेतना !
जुड़ा है
जो
विद्युत् प्राण से
अगीचर प्रणय का
चिद विलास
वही है
अधु स्नात
विरहिन की
आनन्दमयी
वेदना !

कसक !

गये भर समी पुराने घाय
तीर फिर फको कोई और ?

चुका कर परिचय मेरा प्राण
दरद का अदभुत है आनन्द,
उमड़ते रिस रिस कर दिनरात
हृदय से अमृत वर्षों छद,

नहीं है दूजा कोई और
यही है मीरा का वित चोर !

नहीं है मेरे मन की चाह
कि प्रियतम बन जाऊ निर्वेद,
कामना है तो केवल एक
करू मे अग जग को सवेद,

गगन का सायक है यह शून्य
कि उस मे घिरें घटाए घोर !

व्यथा है मौक्तिक मणि अनमोल
कसक है कस्तूरी की गंध,
तरंगित रखती जीवन नीर
पीर की चंचल लहर अमन्द,
फूकता उर की गहरी टीस
मुरलिका रखती मुझे विभोर !

मृग मन !

आसकित
पल पल
आनन्दित
क्षण क्षण
ऐसा है
प्रियतम
मेरा यह
मृग मन !
आँखों में
दोनों
आखेटक
मधुवन,
कसी है
दुविधा ?
कसा यह
जीवन ?
गहरे में
उतरो
अपने में चेतन
धीरे से बोला
मेरा अयचेतन
ओ रे मृग मन !

७४८६

लक्ष्य !

बोते ही
धरती मे
होती है
गुरु
एक ही साथ
पाताल और
आकाश को
ओर
बीज की यात्रा,
जहूरी है
सृजन की
प्रक्रिया मे
सहयोग
अधवार
ओर
प्रकाश का
बयो कि
चेतना का
प्रथम और
अंतिम
लक्ष्य है
समग्र का बोध !

सशय चिस्मय !

मत कर
हर जिजासा का
शब्द से
विनिमय,
चाहिये
जागते रहने के लिये
कुछ सशय
कोई विस्मय !

१२६७७

सत्य !

नहीं होगी
धरा
शूल विहीन
पहन ले
पदत्राण,

निरयक है
तम से
सघष
जला ले
प्रदीप,

नहीं मिलेगी
आकाश की सीमा
पकड ले
मिट्टी को मजिल,

असत्य है
दृष्टि मे बसी
भीड
सत्य है
केवल
अबेलापन !

प्रतिबद्ध दृष्टि ।

नहीं टूटा

पात्र

टूटी

प्रतिबद्ध दृष्टि,

नहीं

ध्यष्टि

समष्टि

सृष्टि ।

क्षति ।

मत सौंप
शब्द को
हर विचार,
अनुभूति की
यह क्षति
कर देगी
ऊर्जा को
कोयला !

१७ ६ ७७

आहत अभिमन्यु !

आह, मैं
आहत अभिम यु
रहा अटूट
शब्द कौरवों का
व्यूह
नहीं है
पाथ का सत्य
मेरा भोगा हुआ
यथाथ !

१२ ६ ७७

अर्थ की रेडिया !

होने के
लिये
सायक
चलते हैं
अक्षर
मिल कर,
पहुँच कर
मजिल पर
छोड देते हैं
पीछे
शब्दों की पगडडियां
बन जाती हैं जो
कट पर
समय के
सदम से
अर्थ का बडिया !

उदार शून्य !

देता है
हर अस्तित्व को
अपना
अन अस्तित्व
उदार शून्य !

सृष्टमय—चिन्मय !

अथ
गद्द के
सुमन की गद्य
सूधते हैं बान
नहीं घ्राण,
होता परिवर्तित
सदम के
अनुसार
सृष्टमय इन्द्रियों का
विषय,
केवल
अपरिवर्तित
यह
जो है
चिन्मय !

शोष अशोष !

नहीं जानता
कोन सा होगा
मेरा
शोष गीत,
जानता हूँ
केवल यही कि
गा रहा हूँ
उसको
जो है
अपने मे अशोष !

१८३८६

जीवन बोध

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
12
13
14
15
16
17
18
19
20
21
22
23
24
25
26
27
28
29
30
31
32
33
34
35
36
37
38
39
40
41
42
43
44
45
46
47
48
49
50
51
52
53
54
55
56
57
58
59
60
61
62
63
64
65
66
67
68
69
70
71
72
73
74
75
76
77
78
79
80
81
82
83
84
85
86
87
88
89
90
91
92
93
94
95
96
97
98
99
100

क्षण !

क्षण का
तो
क्षण ही
लेखा,
स बत्सर, बत्सर
सशय की रेखा,
अगुली पर कसा
अनगिन को
गिनना ?
तमय हो
पर तू
तुझ को जो करना,
बीता सो रीता
आगे है सपना,
समुख जो क्षण है
केवल वह अपना !

काल गरुड !

नहीं सिमटते
कभी
काल गरुड के
खुले पख,
नहीं है
उस का कोई नीड
जहा बंठ कर
करे
क्षण भर
प्रणय लीला
भरता है
निरंतर उडान
होते रहते हैं
उस की वज्र चंचु से
लहू लुहान
बेचारे दिगनाग,
बचा है
केवल शेष भाग
धर लिया है
जिसने
वसु-धरा को
अपने फण पर !

१४२८४

चिडम्यना !

हया, धूप
चादना, बरसात
सब को है
तुम से प्यार,
चाहती है
छूना, लिपटना, चूमना
पर तुम हो कि
बठे हो बन्द कर द्वार,
सहघर है
केवल अधकार
फस कर
जिस की गिरफ्त में
हो गये
तुम कितने लाचार
कि टटोल कर ही
कर सकते हो
अपने होने का
अहसास !

शिलाएँ और तृण !

रही
जहाँ की तहा
जडीभूत शिलाएँ,
बह आया
अकिंचन तृण
रत्नाकर तक,

होंगी
अपनी ही
कुठाओ से
क्षयित
एक दिन
डूब जायेगा
होने का
मिथ्या बोध
काल के अतल गम मे
जहा है
अपरिचय का
निष्ठुर निबिड अधकार !

१३ ४ ८६

गीतो की धापसी !

सोचता था
चले गये सब
शब्द, सुर, गीत
करूँ गा अब
मौन से साक्षात्
पर हुई क्या बात ?
लौट रहे हैं
बाध कर गोल
परिचित गीतो के बोल
रह गया कौन सा
अनगाया राग ?
गा चुका श्रीराग
भरवी, प्रभाती, विहाग,
इच्छा हुई
कर लू बंद द्वार
करूँ अनमुनी
उन की पुकार
पर आया विचार
खोल कर किवार
पूछ लू
कुशल समाचार
चाहिये था
उहँ बस
इतना सा अवसर
उलझा कर
बातों मे
आ बठे अंदर !

प्रश्न !

तोड बज्रवत शिलाखड कब
निभर आया बाहर ?
जरा जीण जिज्ञासा इसका
मिला न अब तक उत्तर ?

उछल कूद कर कल कल स्वर मे
भरना क्या गाता है ?
मुक्ति गीत या व्यथा शिला की
कहने को आता है ?

शिला स्नेहमय जननी, निभर
चचल शिशु प्यारा ह,
पोषित किया उदर मे पहले
फिर फूटी धारा ह !

१६३ ८६

कटा हुआ पतंग !

दौडती ह
भीड
कटे हुए
पतंग के पीछे
भूल कर
उम्र का हिसाब,
बिना देखे
राह के
गडहे, गत
उतार चढाव,
केवल आख मे
कटा हुआ पतंग,
थामे हाथ में
टेढी मेढी लकडिया
लम्बे वास
फाटेदार छडिया,
लग भी गया
अगर
किसी के हाथ,
तो मच जाती ह
छीन भपट
जाता ह फट
बेचारा पतंग
और फिर
बिखर जाती ह भीड
ठठा कर
एक दूसरे पर
यही ह
उन सब
दिशाहारा लोगों का हाल
जो दौडते हैं
उम्र भर
भीड के साथ
बिना जाने
अपने जीवन का लक्ष्य !

नदी !

सूख गया
उत्स
मर गई
नदी,
शोकाकुल
सागर
खाता रहा
पछाड
तट पर,
बन गये आसू
घुमड कर
बादल
बरसे
जमकर
जी गई
नदी !

१३३८६

दिन ।

हटाया
सूरज ने
ज्यो ही
अपना कंधा
भरभरा कर
गिर पडा
दिन,
बिखर गई
नखत किरचें
गगन आगन में
धरता ह पाव
सभल सभल कर
शिशु चाद
आयेगी
पौ फटते ही
अनुचरो उपा
कर देगी
बुहार कर
निरापद
आते सूरज का पय ।

धूप में गमले ।

चाहते हो
अगर
ये पौधे
फूलें फलें
रख दो
उठा कर
धूप में गमले,
बिना खाये
आतप
पट्टेचेगा कसे
फुनगी तक
पानी ?
जरूरी ह
हवाओ की
छेड़छाड़
नहीं तो
रह जायेगी
इनकी बढत
बचकानी,
देखने दो
इनको भी
अपने सर पर
का
खुला आकाश,
करेंगे जब
इन से पट्टी घुहल
खिल उठेंगे
इन के चेहरे उदास,
भोग रहे हैं
अबतक

छाया के नाम पर
ये बेचारे तनहाई,
मिलने दो
इन को
बाहर खड़े हैं
इनके पिता, भाई
देख कर
स्वजन परिजन
सहज ही
उमगेगा
इन का शोमल मन
भर जायेगा फिर
इन की
बहतरीन खुशबू से
तुम्हारा
मुतहा घर
सूना आंगन !

खेला ।

खतम हुआ खेला
व्याप गया नीरव,
चले गये दशक
साथ रहे अनुभव,

रसना पर मधु था
दृग में थी छलना,
अकरुण थे मन में
अभिनय थी कहरणा,

सब थे मुत्तौटे
क्या बड़े छोटे ?
गये धर हाथ में
कुछ सिक्के खोटे ।

शब्दों के नचघारे !

पहने स्याही की पोशाक
सबे हैं पागद पर
पक्ति बढ़
छूँ छे गब्द
नहीं जायेंगे ये
पुस्तक के पृष्ठों से आगे,
मात्र मचीय कठपुतले
सधे हैं जो
अपने नचाने वाले की
डार से,
होते ही नाच
खतम
लौट जायेंगे
तमाग बीन
कुछ सिक्के
उधाल कर
ताली पीट कर
अपने घर,
रहेगा अकेला
नचघारा
बदोरता
बिखरी इक्कनिया दुअनिया,
लाद कर फिर
भाडे की गधा गाडी पर
अपना लटर पटर सामान
चला जायेगा कल
किसी दूसरे गांव
क्यो कि नहीं है
उसके पास ऐसा कुछ
जिसे देखने के लिये

रोज आये वही भीड़
जो देख चुकी है
यह खेल पहले,
अलग चीज है
पेट की भूख
मन की भूख से
इसे जानता है
यह गवई कठपुतली वाला
पर नहीं स्वीकारते
शब्दों के नचवारे
जिन्दगी के इस
नगे सच को
और झुठलाते हैं
मन की भूख को
कह कर इसे
बुजवा विचार !

आत्म का भ्रम ।

अच्छा, सुरा
आँस का भ्रम,
यक्त है गरम
यक्त बेगरम,

बच शोषल
क्या है गगुन,
देवता यह
बरे जिसे मन,

सुनो अधिक
बोलो बम,
फवत दुनिया
न खुशी ना गम ।

निर्दोष !

पेड़ नहीं खुद ही
कहते हैं शूल,
हुई बात यह हम
करगे कबूल,

चुमा लिया उन ने
चुमते नहीं हम,
गुस्ताते यों ही
इस का बस गम,

भूटे ही मत्थे
मड रहे दोष,
फूल देख बहके
हुये गुम होश !

२५ २ ८६

पूत फपूत !

दिन की पीनी ।
तबुआ रात,
जोम का घरला
बाते बात,

घूक गईं बीठ
उसभा मूत,
हुआ कमाऊ
पूत फपूत !

२४२८६

आल मे जयान !

पानी नहीं, खुद बखुद
बहता है ढलान
बठी है जरतें
लोल कर दुफान,

घला गया आदमी
रह रहे मकान,
फयिता बनी औरत
आल मे जयान !

गीत का गाव !

भरी दुपहरी मत जा पयो
बठ प्रीत की छाव,
छूट गई तुक की पगडडी
दूर गीत का गाव,

छव मुक्त बोहड मे तेरे
मटक थक गये पाव,
कौस्तुभ मणि अनुभूति खो गई
चूक गया तू दाव,

राग रहित अभिव्यक्ति कलो वह
जिस मे नहीं सुवास,
लय मे बध कर प्रकृति पहुँचती
स्वयं पुरुष के पास ।

अनुभव ।

बदल गई मुझ से
मेरी ही आँख,
जब चाहा उड़ना
मुकर गई पाख,

धोखे हैं रिश्ते
बनिया है प्यार
देता है सौदा
डडी को मार,

महुत मिला महंगा
अनुभव अनमोल,
जब रहीं जिन्दगी
बिस्तर बर गोल ।

सुधिया के अक्षर !

बटो भी क्षण भर ।

घात करें मन की,

बीते बचपन की,

पढ लें मिटने से पहले

सुधियों के अक्षर !

जीते क्या हारे ?

सतरंगे प्यारे

सपन उड़े, घुन लें

बुछ मुचे बचे पर ।

आते मछुआरे,

वियक्ति बेचारे,

फसी नहीं मछुरी

रहे हाथ मत कर ।

निदियाया पनघट,

उजराया डीवट,

बिसकाती बिजुरी

अमुवाया बादर !

धरती माता ।

भू ष पुष्ट उराजा का जो
बनता दुग्ध हिमानी,
वही बह रहा सरिताओ मे
जननी अघडर दानी,

सहज बरसला, सर्व मगला
ओढे साडी धानी,
सतत अमृता, सब का रोता
घट भरती कल्याणी,

नमन तुम्हे मा चिर कृतज्ञ हैं
सकल सृष्टि के प्राणी,
तुम्हीं समभती निज शिशुओ की
अस्फुट सुतली वाणी ।

१६ १ ८६

प्रकृति बहुरिया ।

बुना हुआ है
रगोन श्रुतुआ स
काल का
अनंत दुकूल
पहन है
जिसे
पुरुष की बहुरिया
प्रकृति,
ढके है
नक्षत्र खचित
सिरे से
शीघ्र,
वृधिया हिमानी से
उन्नत उरोज,
खौंसे है
कचुकी मे
धानी पल्लू,
बाधे है
बटि मे
सलबटी
समबरी नीलिमा,
आरक्त लज्जा से
क्षितिज कपोल,
आबद्ध
आलिगन मे
प्रिय के
नहीं होता
क्षण भर भी वियोग
कहा है
कोई और
ऐसी
चिर मुहागिनी
प्रिया ?

काल वैशाख !

लगाये
प्रदीप्त ललाट पर
आम्र वनों की
भरित मजरित धूल
आया फिर
काल वशाख,
गर्वित मन
है सूर्य से
उसका रक्त सम्बन्ध,
नहीं समाती
विशाओ मे
तेजोदीप्त बेह
छू कर
कनक चरण
अमुवाई
निष्ठुर हृदय हिमानी,
हुई निस्तब्ध
मुन कर
पद चाप
वाचाल बनानी,
हाय मे है
उसके
मुदर्शन सा
वात्पाचक्र
विक्षुब्ध
गिशुपाल सिन्धु
बोल रहा
महा उद्देलित
सहरों के मिस
दुवचन

करते ही
मर्यादा भंग
काट लेगा शीत
यत्न कर जो
ध्योम का जलद
आ गिरेगा
फिर
विचूर्णित होकर
सत्तासित, सतापित
भू पर !

५ ४ ८६

वसन्त गीत ।

पात हीन विटपो मे सहसा
जागी मधु की ज्वाल !

रक्त दीपवत किसलय, कलिया
स्नेहिल लौ अनमोल,
मुरगि ज्योति पर लुट लुट जाते
सास गलम पर खोल,

मृदुल कोंपलो के आचल मिस
ओर फर रही डाल ।

तिमिर बन गया कोकिल, गाता
वह उद्दीपक राग,
सुलग उठे कातार, घघक्ती
नव वसन्त की आग,

मलय समीरण ब्यजन डुलाता
लहके किशुक लाल ।

प्राण प्राण मे आज प्रणय की
दहकी मीठी दाह,
तप्त अधर पर तप्त अधर धर
छक पीने की चाह,

यह मादक उत्ताप सृष्टि के
महा सृजन का काल ।

गीत !

बह बह कर सूखी
असुघन की गदिया,
कीच हुआ कजरा
आये नहीं पिया,

चुन चुन कर तिनके
फुर उड़ी चिड़िया,
यीवन की बरिन
बसमसती अगिया,

सौतिन सी सभा
बल न परे जिया,
शलमी सी जल कर
बयों न बनी दिया !

साध्य घेला में भील ।

ढलता यह सूरज
सँदुर की टिकुली,
घचल मन मछरी
आला की पुतरी ।

गदराया यौवन
गतदल की कुडमल,
कूल लगी काई
पसकों का काजल,

जाता है छुट छुट
सहरों का आचल,
सावन की सुधि मे
भील विकल विह्वल ।

१५ २ ८६

गोधूली ।

लाल हुआ सूरज
गुस्से में पागल,
दौड़ रहे पीछे
तलछोहे बादल,

सहमी सी सभा
होले पग धरती,
अखिपन में आँसू
नखतो के भरती,

चन्दा की हसुली
पहने नम द्वारे,
आई तो सूरज
बिसरा दुख सारे !

राफा !

आला मे बजरा
जूड़े मे गजरा,
उतरी जब पूनम
गेह हुआ उजरा,

पीठ पर बठी
किरण का लहरा,
चितवन मे कोई
सम्मोहन गहरा ?

दीपट पर जागा
कुटिया का विपरा
अनमन हो सिंहरा
जोत गई पियरा !

उतरी जब पूनम
गेह हुआ उजरा !

घासन्ती !

आई वासन्ती
घातायन खोल,
मेरा मन मितवा
मथ गई हिलोल,

अनुरागे पाटल
रक्ताये कपोल,
बतियाता सौरभ
गधाये बोल,

हीरक से हिम कण
कोंपल हिंदोल,
उड उड कर तितली
जाती वे दोल ।

आई वासन्ती
घातायन खोल !

ऊपा !

तिमिर गरल पो
उपा अमृता
भित्तिज मच पर भाती,
अरण दीप्ति से
वसों दिगाए
अनुरजित हो जाती !

सप्त अश्य का
सूरज का रथ
आये इस से पहले,
रक्त-गुलाब
विद्या कर करती
सज्जित पय मटमैले,

जाग इसी के
इगित भर से
खग वतालिक गाते,
ओट हुई
लजवन्ती अरुणा
रश्मि दट्टि के आते !

२२ २ ८६

सध्या भीलनी !

रही डुबा रवि घट
गगन सर सावरी,
पुवती भीलनी
मदमाती बावरी,

कुटिया हैं इन की
दिखते जो तारे,
जसद नहीं बजते
नाच के नगारे,

तिमिर पुरुष काधे
चाद धनुष धारे,
तक तव कर दिन मृग
कितने ही मारे ?

धूप ।

आने से पहले ऊया का
सलिल अलक्त रचाती
रवि का मंगल सूत्र पहन वह
रश्मि चरण धर आती,

धूप रूप की रानी, नही
सोन चिरय्या गाती,
पङ्क धान की स्वर्ण बालिया
वर्ण फूल बन जाती,

अंतर के स्नहिल इगित से
जड हिम को पिघलाती,
क्षिप्र सलिल से उमगा नदिया
काम धेनु रभाती,

कहीं विटप दल तले लेट कर
छाया मिस सी जाती,
भाक खगों के नीड नीड मे
दबे पाव फिर जाती

महल, कुटी, वन, निजन सब से
वह अबोल बतियाती,
भुवन भोहिनी, हेम अगिनी
सम्भाती घर जाती ।

पाचस !

मटियाया हरियल
घरती का आंचल,
देल हुये आकुल
अमुवाये बाबल,

टुई अमित, शक्ति
भोरी मन विद्युत,
वहके दग देखे
सहमा नम अच्युत,

सपकाती जिह्वा
पडो टूट भू पर,
लड भगड मुहजली
चली गई ऊपर !

१३ ८६

शिशिरान्त ।

बतियाते सूखे
अनमने पत्ते
शिशिर गया सठिया
कठिन दिन बीते,

आती वासन्ती
अनुगुजित पायल
लगता है वनप्रिय
चचल दूग काजल,

विलग हुई हिम से
आर्लिंगित सरिता
फूटी अभिमत्रित
मधुमती कविता !

उत्साह धरती
सुगबुगे कल्ले
पहन रही विटपी
किरमची छल्ले,

सपने सी उडती
सतरंग तितली,
सूरज की घुघली
दृष्टि हुई उजली !

सृजन सगीत !

नमन मुमन का
जिसने हस कर
पतभर को ललकारा है !

पगध्वनि मुन आते सौरभ की
क्रूर गिगिर भयभीत हुआ,
प्रिय बिषोग मे रोती रति का
रदन सृजन सगीत हुआ,

नमन दीप को
जिसने जल कर
कहा कहा अधियारा है ?

सूध्य बन गई स्वण रश्मिया
दीपित पय, घर द्वार हुये,
नभ के तह के किसलय तारे
सगल वदनवार हुये,

नमन मनुज को
जिस ने उठ कर
दिया क्रांति का नारा है !

पौरुष जागे दलित पतित का
शोषण मुक्त समाज बने,
व्यक्ति चेतना पर आधारित
राज स्वय स्वराज बने,

तोडो कुठा, प्राण प्राण मे
बहती अमृत धारा है !

पेला फूला रात मे ।

नाँद भरी पाटल को कुडमल
बेला खिला अकेला,
मावस दइया की गोदी मे
राका शिशु अलबला,

इस की मादक सुरभि सलोनी
बाल सुलभ किलकारी,
सुन कर जागी हरसिगार की
कलिया धवारी प्यारी,

भोर हुये आयेगी मिलने
तितली रूप कुमारी,
गोरे गोरे गाल चूम कर
जायेगी बलिहारी ।

उत्खनन !

व्यर्थ है
विगत का
उत्खनन,
कहा मिलेगा
गम्बूक का
विद्धिन शिर ?
एकलव्य का
सहित अगूठा ?
उग आया है
पौराणिक दूहों पर
प्रतीकों का
सघन जगल,
नहीं है
वतमान का
समाधान
अनजाने
अतीत की समीक्षा,
सुनो
अपने ही
अंतर के
सत्य को
मात्र
स्थितिया ही हैं
युग धम की
परिभाषा !

सखि, कितने दिन और !

सखि, कितने दिन और !
नाचेंगे यों ही बिना मेघ मोर !
सखि, कितने दिन और ?

घरती है गूगी
बहुरा आकाश,
सगय के द्वारे
बठा विश्वास,
रातो के घर मे सोयेंगे भोर !
सखि, कितने दिन और !

अजगर से पय के
चगुल मे गाव,
सहमे से मृग के
छौने से-पाव,
अघरा की चुप ने गीत लिये चोर !
सखि, कितने दिन और !

बठ गई सर के
गहरे मे प्यास,
कहती है तट से
लहरें उदास,
हम तुम को बाधे अनदेखी डोर !
सखि कितने दिन और !

सूरज !

भर गया
पक कर
सूरज
साभ के खेत मे
हो उठे
अधुरित
अधेरे की माटी मे
सितारे !

सोचो क्षण भर !

भग करने से
पहले
नीरवता को
सोचो
क्षण भर,
क्या
इस में भी
अधिक
सौम्य हैं
तुम्हारे शब्द,
अगर
नहीं
तो कर दो
समर्पित
अशब्द को
अपनी
अहिम्ता !

प्रयास !

धय है
बीज को
तोड़ कर
वक्ष को
बाहर निकालने का
प्रयास,
चाहते
अगर विकास
रख कर विश्वास
सौंप दो
रेत को
भोगेगा अतस्तल
जागेगा मूल
फूटेंगे किसलय
महकेगे फूल !

३० ११ ८१

सजीवन !

नहीं कर
सकता
प्रदीप्त
निष्प्रभ दीप को
प्रचंड सूर्य
चाहिये
मृत्तिका को
सजीवित
करने के लिये
स्नेह की
छुअन !

चेतना का हाथ !

बुरा नहीं है
भीड का
साथ
अगर धामे
रहो
अपनी
चेतना का हाथ
क्यों कि
आते ही चौराहा
चुनना होगा
तुम्हें स्वयं
अपनी
मजिल का पथ !

रोबोट ।

कर देगा
निश्चित रूप से
हल्का
तुम्हारे
श्रम का भार
यह
रोबोट
पर नहीं
सहला सकेगा
जीवन की पीडा
बयो कि
नहीं है
इसके अनुभूति शून्य
सगणक मे
सवेदना की
द्वारा ।

लोग !

शीत से
ठिठुरते हुये
लोग
आये मागने आग,
दे दिया गया
उहे
आग का चित्र,
रख कर उसे
घास फस पर
करने लगे वे
उठने वाली
लपट की प्रतीक्षा !

प्यास से
व्याकुल हुये लोग
आये मांगने
जल
दे दिया गया
उहे
नदी का चित्र,
टाक कर
उसे खूटी पर
करने लगे वे
लहर के आने का
इतजार !

भूख से
व्रस्त हुये लोग
आये मागने आन
दे दिया गया
उहे
भारत का घोषणा पत्र
रख कर उसे
चूल्हे में
देखने लगे वे
रोटी के
आने की राह !

तूणीर !

नहीं कर
पाया
भृगवत दौड़ते
क्षण को
एक भी
शब्द-शर
बिद्ध
हो गया
यो ही
रिक्त
सासो का तूणीर !

सत्य !

भरी है
असफलताओं ने ही
उपलब्धियों के
राजमहल की नींव,
हो जाता है
जब यही सत्य
आँख से ओभल
तो डूब जाता है
समय की
गर्बिश में
आस्था का सूरज
श्रद्धा की चादनी,
रह जाते हैं
कुम्भारे
इतिहास के पत्ते !

पूस का दिन !

बर्फ के
पहाड सा
पूस का दिन,
अधमरा सूरज
हवाए नागिन,
बशित पोर पोर
बटलने साभ भोर
ठिठुरती आग की
बध गई घिग्घी
तोलियाँ चिडचिडी
साधे हैं चुप्पी
कर रहा रगड फू क
आदमी जिद्दी
टुड्डा के
उजाड सा
पूस का दिन !

मार्गशीर्ष !

महाकाल की
भक्त
ऋतु-वीणा का
मध्यम छंद,
सयोगी
प्राणों के
मधु उत्सव का
ललित निबंध
मागशीर्ष !
होते ही
नीरख
सहस्राक्ष के
अंत पुर में
नत्परता
केका कठी
पावस के
नूपुरों का
रणन-स्वर्णन
आधा
खजन-नयन
मागशीर्ष
भरत
धरा की
हरित गोद में
नन्दन वन का
कनकौज्ज्वल
मन्दार सुमन
मागशीर्ष !

आश्विन !

आता
अलका से
सौम्य क्वार
गघाते सासो मे
मौलसिरी, हरसिंगार
खोल रहा
उमादिन पावस के
विजडित मेघ द्वार,
थामे
च चल
शिशु शरद हाथ
उडता शुभ
नीलकठ
शकुन साथ,
करती अर्पित
मधुक्षीरा धरती
स्वण धान,
पुलकित मन
हृदय, प्राण
कर्पूरी सुरमई
भोर साभ,
बजते मन्दिर मे
शख भ्रांभ
गुजित भक्तो का
कठ नाद
जय रघुनाथ
जय रघुनाथ !

कार्तिक !

किस की
अगुली की
अनछुई छुअन ?
खोले सपनाती
घरती ने
धौले रतनारे
कमल-नयन
खिल खिल कर
हँसते कार्तिक का
धवल हास
ये काश विजन,
फूटे जो
अस्फुट प्रणय बोल
वे निशिगन्धा के
मदिर सुमन,
जागे कविता मे
बाल्मीकि,
तमसा तट पर
फ्रॉच मियन
सहलाता प्रिय
प्रिया पल
विह्वल कठो में
रति-कजन,
दिन शोभित
जसे
महाकाल की
वेदी पर
रजत शल्ल,
युवती सध्याए
उवगिया
ले दीप हाथ
करती नतन
बरसाता
दीपोत्सव
कसन !

दिग्भ्रम !

बनता है
बीज
पहले मूल
फिर
शाखा, किसलय, फूल
पर
आवमी की भूल
बिना मूल
चाहता फूल,
होकर विफल
बन जाता गरल
विकृत अहम,
ध्रुमित शक्ति
करता दग्धित २
उन को
जो रहे कभी
उसकी देह,
लोजता
कूठामों के विषर
मन विषघर ।

एक और शर ।

बन जाती है
क्षण भर में
जाखेटक की आख
निर्जीब
तीर की आख,
बेघ देती है
क्रीडारत
वय जीवो का
कोमल मम-स्यल,
पडी है वह
मुख में
हरित दूब दाबे
मृत
मृग शावक की
कचन देह
भर भर कर
भरते हैं
समीप ही खडी
मृगी के
स्नेहाकुल नयन,
टटोल रहे हैं
हत्यारी दृष्टि के
अधे हाथ
तूणीर में
एक और शर ।

२७८६

स्वभाव और अनुभूति !

कर लेता है
अपने
सहज स्वभाव से
प्रशस्त
निभर
गतव्य तक
पहुँचने की
राह !

कसे हो
सिंचित
सूखते धान
कुम्हलाते उद्यान
यह है
चित्त उसका
जिस को बोध है
अपने होने का !

